|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

6/6 (श्लोक 54-78), शनिवार, 04 नवंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/rK-EZIsTbBQ

श्रेष्ठ भक्त

हरि नाम सङ्कीर्तन, प्रारम्भिक प्रार्थना और दीप प्रज्वलन के पश्चात् विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता के सभी अध्याय बार-बार सुनने और उनका अनुसरण करना अति आवश्यक है। बार-बार चिन्तन करने से ही अनुसरण होता है। जब हम श्रीमद्भगवद्गीता को कण्ठस्थ करते हैं, अर्थ ग्रहण करते हैं तो वह धीरे-धीरे हमारे जीवन में उतरती है। इसे बार-बार कहना चाहिए और बार-बार सुनना चाहिए जितना अधिक हम सुनेंगे, कण्ठस्थ करेंगे तो वह हमारे हृदय में उतरेगी और आचरण में आएगी। हमारा विचार, हमारा आचार बन जाएगा अर्थात् आचरण में आ जाएगा। जैसे एक माता दूध में शक्कर को घोलती है तो शक्कर की मिठास दूध में उतरती है उसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के कण्ठस्थीकरण से गीता हमारे जीवन में उतरने लगती है। यह अठारहवाँ अध्याय पिछले सभी सत्रह अध्यायों की परिसीमा है, निचोड़ (सार) है। अठारहवें अध्याय का चिन्तन विशेष ध्यानपूर्वक करना चाहिये।

18.54, 18.55

ब्रह्मभूतः(फ्) प्रसन्नात्मा, न शोचति न काङ्क्षति।
समः(स्) सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्तिं(म्) लभते पराम्॥18.54॥
भक्त्या मामभिजानाति, यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां (न्) तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्॥18.55॥

(वह) ब्रह्मरूप बना हुआ प्रसन्न मन वाला साधक न तो (किसी के लिये) शोक करता है (और) न किसी की इच्छा करता है। (ऐसा) सम्पूर्ण प्राणियों में समभाव वाला साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है।
(उस) पराभक्ति से मुझे, (मैं) जितना हूँ और जो हूँ (इसको) तत्त्व से जान लेता है फिर मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

विवेचन -भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि पराभक्ति से मुझ परमात्मा को, मैं जितना हूँ और जो हूँ इसको तत्त्व से जान लेता है फिर उस भक्ति से मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल मुझमें प्रविष्ट हो जाता है। सागर की एक बूँद चखने पर जो खारेपन का अनुभव हमें होता है और हम एक बूँद से जान जाते हैं कि वही समस्त खारापन उस सागर में भी है। जिस प्रकार एक गृहिणी चावल पकाते समय एक चावल के दाने को देखकर जान जाती है कि समस्त चावल पक गए हैं और खाने योग्य हो गए हैं। उसी प्रकार

श्रीमद्भगवद्गीता के ये सात सौ श्लोक जब हम पढ़ते हैं तो हम ईश्वर को तत्त्व से जान लेते हैं। जिस प्रकार चावल को हाथ से देखकर यह ज्ञान तो हो जाता है कि चावल पक गए हैं या नहीं लेकिन भूख का शमन नहीं होता। भूख के शमन के लिए उन्हें खाना भी पड़ता है। उसी प्रकार भगवान कहते हैं उस भक्ति से ईश्वर को जानकर तत्काल वह मुझ में प्रवेश करता है। बिन्दु में भी सिन्धु को देखने लगता है; सदैव उस भक्ति के आनन्द में ही रहता है। वह कभी दुखी नहीं होता। एक उदाहरण के द्वारा हम इसे और समझते हैं -

एक बार एक भक्त के सपने में भगवान आए और उसे भगवान ने कहा कि आज मैं तुम्हें तुम्हारे जीवन का प्रवास दिखाता हूँ। भगवान ने चलना आरम्भ किया। समुद्र के किनारे मुलायम सी रेत पर जब वे दोनों चल रहे थे तो भगवान ने बताया कि देखो, ये जो दो पदचिह्न दिख रहे हैं, ये तुम्हारे पदचिह्न हैं और जब तुम चल रहे थे तो भगवान का चिन्तन कर रहे थे, इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ-साथ तुम्हारे बाजू में तुम्हारा हाथ पकड़ कर चलता था। तुम्हारे बाजू में जो दो और पदचिह्न है वह मेरे पदचिह्न हैं क्योंकि मैं भी तुम्हारे साथ-साथ चल रहा था। भक्त ने कहा कि मुझे पता है आपकी मुझ पर कितनी अधिक कृपा है। मार्ग में आगे बढ़ने पर काँटे प्रारम्भ हो गए। भक्त ने देखा कुछ दूरी पर आगे बढ़ने पर अब केवल दो ही पदचिह्न दिखाई दे रहे हैं। तो भक्त ने भगवान से कहा कि जबसे काँटे प्रारम्भ हुए तबसे मुझे केवल दो ही पदचिह्न दिखाई दे रहे हैं, आपने मेरा साथ क्यों छोड़ा? तब भगवान ने कहा कि जब से काँटे प्रारम्भ हुए मैंने तुम्हें गोद में उठा लिया यह तुम्हारे पदचिह्न नहीं मेरे पदचिह्न हैं।

आशय है कि भगवान हमारी हर कदम पर रक्षा करते हैं। जब हम देखकर जानते हैं अनुभव करते हैं तो पता चलता है कि भगवान हमारी हर कदम पर रक्षा करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर गोद में भी उठा लेते हैं। यह सब कुछ बिना श्रद्धा और भक्ति के संभव नहीं है। जिसने विभक्त होना छोड़ दिया और भगवान के साथ एक रूप हो गया वही भक्त है।

18.56

सर्वकर्माण्यपि सदा, कुर्वाणो मद् व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति, शाश्वतं (म्) पदमव्ययम्॥18.56॥

मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन - भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है। तुम समस्त कर्मों को मुझे अर्पित करते हुए चलते चलो। अपेक्षा को छोड़कर अनपेक्ष बन जाओ।

अनपेक्षः शुचीर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः । (12.16)

फल की अपेक्षा छोड़ दो और कर्त्तव्य पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहो। संन्यासी होकर भागने की आवश्यकता नही है। परन्तु अर्जुन संन्यासी बनने के लिए राजी था। उनकी राज्य और सुख भोग की कोई आकांक्षा नहीं। अपनों को मारकर अगर सारे सुख भोग मिलते हैं तो ऐसे सुख अर्जुन को नही चाहिये। इस प्रकार जीवित होने का क्या लाभ। वे कहते हैं-

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।1.32।।

ऐसे जीवित होने से क्या लाभ? इस प्रकार अर्जुन जीवन से भागना चाहते थे परन्तु श्रीमद्भागवद्गीता लोगों को भगाने का नहीं जगाने का कार्य करती है। भगवान कहते हैं कि **भागो नहीं जागो।** यह गीता का मूल मंत्र है। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी अगर हम भगवान के प्रति समर्पित होना सीख ले तो हमें संन्यास लेने की कोई आवश्यकता नहीं। कहा भी है-

मोको कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में ।

किसी मंदिर किसी मस्जिद में जाने की आवश्यकता नही; हमारा घर ही वृन्दावन बन जाता है। भगवान कहते हैं कि मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी, मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी परम पद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

18.57

चेतसा सर्वकर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य, मच्चित्तः(स्) सततं(म्) भव॥18.57॥

चित्त से सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर (तथा) समता का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्त वाला हो जा।

विवेचन - भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि चित्त से सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर तथा समता का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्त वाला हो जा। जिससे भी मिलो मन में भाव यही रहे कि ईश्वर से ही मिला हूँ, जो भी कर्म करो तो मन में भाव यही हो कि मैं पूजा कर रहा हूँ। दिनभर में जितने कर्म करते हैं वे सभी कर्म माला के रूप में हम शाम को ईश्वर को अर्पित कर दें। भगवान ने तो कहा भी है कि -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।9.26।।

पत्र, पुष्प, फल या जल एक वस्तु भी यदि कोई भक्त श्रद्धा, भक्ति से मुझे प्रदान करता है तो उस भक्त के द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पण किये हुए वे पत्र पुष्पादि मैं (स्वयं) खाता हूँ अर्थात् ग्रहण करता हूँ।

यह भी सम्भव न हो तो रात्रि काल में दिन भर के किए समस्त कर्मों की माला ईश्वर को अर्पित करते हुए मन गदगद हो जाए, रोमांचित हो जाए, आँखों से आँसू निकल आए, मन पवित्र और पावन हो जाए। ऐसे भाव-विभोर होकर सब कुछ ईश्वर को अर्पित कर दें। मन और बुद्धि का समर्पित होना अति आवश्यक है। मन तो समर्पित हो जाता है लेकिन बुद्धि तर्क करती है, प्रश्न करती है और समर्पण को डगमगाने का प्रयास करती है। मन और बुद्धि दोनों जुड़ जाए अर्थात दोनों का योग हो जाए और इसी योग से ईश्वर के चरणों में चित्त अर्पित हो पाएगा।

18.58

मच्चित्तः(स्) सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्, न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥18.58॥

मुझमें चित्तवाला होकर (तू) मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहंकार के कारण (मेरी बात) नहीं सुनेगा (तो) तेरा पतन हो जायगा।

विवेचन - भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहङ्कार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा तो तेरा पतन हो जायगा। दोनों मार्गों में से कोई एक मार्ग को चुनना होगा तो निश्चित रूप से हम श्रेष्ठ मार्ग का चयन करेंगे। इस श्रेष्ठ मार्ग में भी दो विकल्प हैं या तो केवल मन से चलो या केवल मन से नहीं अपितु बुद्धि को भी साथ लेकर चलो। विकल्प दो ही हैं तो चिन्ता किस बात की। दूसरे विकल्प को चुनकर मन और बुद्धि के साथ आगे बढ़ना ही सही है। इसी प्रकार तुलसीदास जी, मीरा, कबीर, तुकाराम और ज्ञानेश्वर महाराज भी आगे बढ़े।

स्वामी विवेकानंद को रामकृष्ण परमहंस ने कह दिया कि हाँ मैंने देखा है उस भगवती को। मैं जैसे तुमसे बात कर रहा हूँ, उसी

प्रकार माँ से बात करता हूँ। यह सुनकर नरेंद्र ने कहा कि मेरी बात कराओ, मैं भी मिलना चाहता हूँ, माँ से बात करना चाहता हूँ। तो स्वामी रामकृष्ण ने कहा कि जाओ; भीतर जाकर बात कर लो। जब नरेंद्र भीतर गए तो माँ की मूर्ति को कम्पायमान होता देखकर नरेंद्र यह भी भूल गए कि माँगने क्या आए थे? वे कहने लगे माँ भक्ति दे, माँ ज्ञान दे, माँ वैराग्य दे। वे बाहर आ गए। माँ के तेज को सहन नहीं कर पाए क्योंकि भक्ति इतनी प्रगाढ़ नहीं थी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा माँग लिया जो माँगना था उन्होंने कहा नहीं माँग पाया, गुरुदेव ने कहा जा वापस जा, माँग ले जो माँगना है। भीतर गए तो माँ ने फिर कहा माँगो क्या माँगते हो? फिर उन्होंने वही भक्ति, ज्ञान और वैराग्य माँगा। तीसरी बार भी यही घटना घटी और इसके बाद स्वामी विवेकानंद अपने गुरु के बताए मार्ग पर चलने लगे और समर्पित हो गए।

सन्तों के द्वारा बताया गया मार्ग हमारी माँ के द्वारा बताए गए मार्ग के समान होता है। जिस प्रकार माँ के द्वारा कही गई बात के साथ हम तर्क-कुतर्क नहीं करते और उनकी बात मान लेते हैं उसी प्रकार सन्तों ने जो कह दिया उसमें बुद्धि लगाने की आवश्यकता नहीं है। बुद्धि का समर्पण होना आवश्यक है। भगवान ने इस बात की गारण्टी दे दी है कि घटना तो घटेगी बस मन और बुद्धि का साथ-साथ होना आवश्यक है।

18.59

यदहङ्कारमाश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते, प्रकृतिस्त्वां (न्) नियोक्ष्यति॥18.59॥

अहंकार का आश्रय लेकर (तू) जो ऐसा मान रहा (है) कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या (झूठा) है; (क्योंकि) (तेरी) क्षात्र-प्रकृति तुझे युद्ध में लगा देगी।

विवेचन - जिस प्रकार कोई व्यक्ति प्रकाशित बल्ब को देखकर यह मानने को तैयार नहीं होता कि यह बल्ब तार के द्वारा प्रवाहित बिजली से प्रकाशित होता है और कहता है कि मैं छू कर देखूँगा तभी मानूँगा कि इसमें बिजली प्रवाहित हो रही है। अपने अहङ्कार के कारण वह उसे छूता है और उसे करण्ट लगता है।

उसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि अहङ्कार का आश्रय लेकर तू जो ऐसा मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या झूठा है; क्योंकि तेरी क्षात्र-प्रकृति, तेरा स्वभाव तुझे युद्ध में लगा देगा। तुम अपने स्वभाव को जानो। तुम महावीर हो, रथी हो। तुम्हारे भीतर एक क्षत्रिय बैठा है। अगर तुम संन्यास लेकर जंगल में भी चले जाओगे और वहाँ शेर आ जाएगा तो वहाँ तुम धनुष बाण लेकर अपने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करोगे। मैं जो कह रहा हूँ उसे मान लो ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा स्वभाव जबरदस्ती तुम्हें युद्ध में लगाएगा और जबरदस्ती कार्य करने से हारने की सम्भावना अधिक होगी।

18.60

स्वभावजेन कौन्तेय, निबद्धः(स्) स्वेन कर्मणा।
कर्तुं(न्) नेच्छसियन्मोहात्, करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥18.60॥

हे कुन्तीनन्दन ! अपने स्वभाव-जन्य कर्म से बँधा हुआ (तू) मोह के कारण जिस युद्ध को नहीं करना चाहता, उसको (तू) (क्षात्र-प्रकृति के) परवश होकर करेगा।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं, हे कुन्तीनन्दन! अपने स्वभाव-जन्य कर्म से बँधा हुआ तू मोह के कारण जिस युद्ध को नहीं करना चाहता, उसको तू क्षात्र-प्रकृति के परवश होकर करेगा। तुम्हारा स्वभाव तुम्हें इस कार्य को करने में लगाएगा इसलिए अपने सभी विचार छोड़ अपना गाण्डीव उठाकर तीरों की वर्षा करो।

18.61

ईश्वरः(स्) सर्वभूतानां(म्), हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥18.61॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में रहता है (और) अपनी माया से शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

विवेचन - हे अर्जुन! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार, उनके स्वभाव के अनुसार भ्रमण कराता रहता है। जो कर्म तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल वही परमेश्वर तुमसे करवाएँगे। अगर तुम इसके विपरीत कार्य करोगे तो दोनों तरफ से तुम्हें खिंचाव महसूस होगा और तुम्हारा मन भ्रमित हो जाएगा। जब हमारा मन भ्रमित होता हो तो हमें अपने माता-पिता या गुरुजन की बात मानकर उनका अनुसरण करना चाहिए अन्यथा गड़बड़ होने की सम्भावना हो सकती है।

18.62

तमेव शरणं(ङ्) गच्छ, सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां(म्) शान्तिं(म्), स्थानं(म्) प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥18.62॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से (तू) परमशान्ति (संसार से सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! तू सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से तू परम शान्ति संसार से सर्वथा उपरति को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायगा। तुम भीतर बैठे परमात्मा की शरण में चले जाओ उन परमात्मा की कृपा से तुम शान्ति को और उनकी कृपा को भी प्राप्त कर सकोगे। जब मन अशान्त हो जाए तो लम्बी साँस लो, योग करो और सोच समझकर निर्णय करो निश्चित रूप से तुम्हें परम पद की ओर ले जाएगा। अगर अशान्त अवस्था में निर्णय लिए जाएँगे तो वे कभी भी सही नहीं हो सकते।

18.63

इति ते ज्ञानमाख्यातं(ङ्), गुह्याद्गुह्यतरं(म्) मया।
विमृश्यैतदशेषेण, यथेच्छसि तथा कुरु॥18.63॥

यह गुह्य से भी गुह्यतर (शरणागति रूप) ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। (अब तू) इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

विवेचन -भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह गुह्य से भी गुह्यतर शरणागति रूप ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। अब तू इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर। मुझे जो कहना था मैंने कह दिया अब तुम सोच समझ कर निर्णय करो। यह गोपनीय से अति गोपनीय बात मैंने तुम्हें बता दी अब तुम उचित समझ कर निर्णय लो।

18.64

सर्वगुह्यतमं(म्) भूयः(श्), शृणु मे परमं(म्) वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति, ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥18.64॥

सबसे अत्यन्त गोपनीय सर्वेत्कृष्ट वचन (तू) फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसलिये यह (विशेष) हित की बात (मैं) तुझे कहूँगा।

विवेचन - श्रीभगवान आगे अर्जुन से कहते हैं-सबसे अत्यन्त गोपनीय सर्वोत्कृष्ट वचन तू फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है,

इसलिये यह विशेष हित की बात मैं तुझे कहूँगा। जिस प्रकार विवाह के उपरान्त बेटी जब-जब पीहर आती है तो माता-पिता के द्वारा उसे सीख दी जाती है। वर्तमान में इस सीख के रूप में रुपए दिए जाते हैं जबकि पूर्व में माता अपनी पुत्री के कान में शिक्षा के दो वचन कहती थी वही सीख हुआ करती थी। भगवान श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को सत्रह अध्याय तक अनेक बातें समझा दीं लेकिन यहाँ सीख के रूप में कहते हैं कि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, मैं तुम्हें अत्यधिक प्रेम करता हूँ इसीलिए तुम्हें विशेष हित की कुछ बातें कहना चाहता हूँ।

18.65

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं(न्) ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18.65॥

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला (हो जा), मेरा पूजन करने वाला (हो जा और) मुझे नमस्कार कर। (ऐसा करने से तू) मुझे ही प्राप्त हो जायगा - (यह मैं) तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; (क्योंकि तू) मेरा अत्यन्त प्रिय है।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं कि है अर्जुन तू मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा और मुझे नमस्कार कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त हो जायगा - यह मैं तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। तुम मेरे भक्त बन जाओ, मेरा ही पूजन करो तो तुम मुझे ही प्राप्त हो जाओगे।

18.66

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं(म्) शरणं(म्) व्रज।
अहं(न्) त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

विवेचन -भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर। समस्त धर्मों का त्याग करके तुम मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें हर प्रकार के पापों से मुक्त कर दूँगा। यहाँ धर्म का आशय हिन्दू या मुसलमान आदि धर्म से नहीं है। यहाँ धर्म का आशय है कर्त्तव्य कर्मों का पालन करना। हमारे कर्त्तव्य कर्मों को करने के दौरान विजय प्राप्ति का उन्माद हमें अहंकार की दिशा में ले जाता है। इस अहङ्कार का त्याग ही समस्त धर्मों का परित्याग है। '**सर्वधर्मान्परित्यज्य**' अर्थात अहंकार का त्याग। श्रीभगवान कहते हैं कि इस दौरान यदि तुझसे कोई पाप हो जाते हैं तो उन पापों से मुक्ति मैं करवा दूँगा बस तू मेरा शरण में आ जा।

18.67

इदं(न्) ते नातपस्काय, नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं(न्), न च मां(म्) योऽभ्यसूयति॥18.67॥

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिए; अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता (उसको) नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि करता है, उसको भी नहीं कहना चाहिए।

विवेचन -भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि यह गुह्यतम वचन तुझे तपस्या से हीन को नहीं कहना चाहिए; अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता उसको नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है; उसको भी नहीं कहना चाहिए। जब तक किसी में श्रद्धा न हो तब तक भक्ति काअङ्कुरण नहीं हो सकता। इसलिए हर कहीं इस बात को प्रारम्भ न करें।

18.68

**य इमं(म्) परमं(ङ्) गुह्यं(म्), मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं(म्) मयि परां(ङ्) कृत्वा, मामेवैष्यत्यसंशयः॥18.68॥**

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, (वह) मुझे ही प्राप्त होगा - इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विवेचन - मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद गीताग्रन्थ को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा - इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिन लोगों के मन में श्रद्धा और भक्ति का भाव है उनको गीता से जोड़ने का प्रयास करना सबसे बड़ी भक्ति है।

18.69

**न च तस्मान्मनुष्येषु, कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्माद्, अन्यः(फ्) प्रियतरो भुवि॥18.69॥**

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

विवेचन - उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं। जो व्यक्ति भगवद्गीता के ज्ञान को सब लोगों तक पहुँचाएगा वह मेरा परम प्रिय शिष्य होगा और भविष्य में भी ऐसा कोई और प्रिय नहीं होगा जैसा यह भक्त होगा।

18.70

**अध्येष्यते च य इमं (न्), धर्म्यं (म्) संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहम्, इष्टः (स्) स्यामिति मे मतिः॥18.70॥**

जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है।

विवेचन - जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है। भगवान के इस गीत, इस संवाद को जो पढ़ता रहेगा वह भी यज्ञ ही करेगा और मैं उसके इस ज्ञान यज्ञ से पूजित होता रहूँगा। यही गीता का माहात्म्य है।

18.71

**श्रद्धावाननसूयश्च, शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः(श्)शुभाँल्लोकान्, प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥18.71॥**

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस (गीता-ग्रन्थ) को सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के शुभ लोकों को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस गीता-ग्रन्थ को सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त हो जायगा। जो लोग पढ़ नहीं सकते; जो अनपढ़ हैं; वे भी गीता जी के पारायण के समय यदि केवल श्रवण करते हैं तो वे भी परम ज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं। वे परम ज्ञान को प्राप्त करके श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त हो जाते हैं।

18.72

कच्चिदेतच्छ्रुतं(म्) पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः(फ्), प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥18.72॥

हे पृथानन्दन ! क्या तुमने एकाग्र-चित्त से इसको सुना? (और) हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हुआ ?

विवेचन -हे पृथानन्दन ! क्या तुमने एकाग्र-चित्त से इसको सुना? और हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हुआ? भगवान कहते हैं क्या तुमने इस ज्ञान को एकाग्रचित्त होकर सुना?

18.73

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः(ख्), करिष्ये वचनं(न्) तव॥18.73॥

अर्जुन बोले - हे अच्युत ! आपकी कृपा से (मेरा) मोह नष्ट हो गया है (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। (मैं) सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। (अब मैं) आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

विवेचन - इस पर अर्जुन बोले - हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। मैं सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। अब मुझे कोई डिगा नहीं सकता, अब मैं स्थित हो गया हूँ। अब मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति को प्राप्त कर लिया है। अब अर्जुन स्वयं के विचारों से आगे बढ़ सकते हैं क्योंकि स्मृति लौट आयी है। अब केवल रथ ही नहीं मन की लगाम भी उन्होंने भगवान कृष्ण के हाथों में सौंप दी है।

अब सौंप दिया इस जीवन का
सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में
और हार तुम्हारे हाथों में।

अर्जुन कहते हैं कि अब आप जो कहेंगे वही मैं करूँगा। अर्जुन के मन में दीपावली के दीप जल उठे। वे कह रहें हैं- 'करिष्ये वचनं तव।'

अन्य देशों में भगवान अवतार नहीं लेते परन्तु भारतभूमि में श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञान के लिये भगवान को भारत में स्वयं आना पड़ता है। भगवान हमसे विशेष प्रेम करते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने चतुर्थ अध्याय में कहा है-

श्री भगवानुवाच
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।4.1।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।4.2।।

यह परम्परा प्राप्त योग मैंने तुम्हें बताया। विवस्वान से होकर यह परम्परा भारत की परम्परा रही है। भगवान को भी यहाँ आना पड़ता है, उन्हें भी यहाँ बार-बार आना पसन्द है।

18.74

सञ्जय उवाच

इत्यहं(म्) वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषम्, अद्भुतं(म्) रोमहर्षणम्॥18.74॥

सञ्जय बोले - इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमाञ्चित करने वाला अद्भुत संवाद सुना।

विवेचन - सञ्जय बोले - इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमाञ्चित करने वाला अद्भुत संवाद सुना। मृत्यु से जीवन का प्रवास, अहङ्कार से समर्पण का प्रवास, विषाद से सत्य तक का प्रवास अर्जुन ने देखा इसलिए अर्जुन अब महात्मा हो गए। अज्ञान से ज्ञान का प्रकाश अर्जुन ने देखा इसलिए अर्जुन अब महात्मा हो गया।

18.75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्, एतद् गुह्यमहं(म्) परम्।
योगं(म्) योगेश्वरात्कृष्णात्, साक्षात्कथयतः(स्) स्वयम्॥75॥

व्यासजी की कृपा से मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग (गीता-ग्रन्थ) को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सुना है।

विवेचन - सञ्जय कहते हैं कि व्यासजी की कृपा से मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग गीता-ग्रन्थ को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सुना है। सञ्जय कहते हैं कि योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के इन वचनों को सुनकर मेरे मन में घटना घटी। जिस प्रकार मन्दिर से निकलते समय घण्टे की ध्वनि से हमारे मन में कुछ घटित होता है वही सञ्जय के मन में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के वचनों से घटित हुआ।

18.76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य, संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः(फ्) पुण्यं(म्), हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥18.76॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को याद कर-करके (मैं) बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

विवेचन - सञ्जय कहते हैं कि हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को याद कर-करके मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ। रोमांचित हो रहा हूँ। धृतराष्ट्र कुछ नहीं बोले।

18.77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपमत्यद्भुतं(म्) हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्, हृष्यामि च पुनः(फ्) पुनः॥18.77॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के उस अत्यन्त अद्भुत विराट रूप को भी याद कर-कर के मुझे बड़ा भारी आश्चर्य (हो रहा है) और (मैं) बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

विवेचन - हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण के उस अत्यन्त अद्भुत विराट रूप को भी याद कर-कर के मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

18.78

यत्र योगेश्वरः(ख्) कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥18.78॥

जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं (और) जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति (और) अचल नीति है - (ऐसा) मेरा मत है।

विवेचन - सञ्जय कहते हैं कि जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है - ऐसा मेरा मत है। सञ्जय ने धृतराष्ट्र को कह दिया कि तुम्हारे पुत्रों की हार निश्चित है और पाण्डवों की विजय निश्चित है क्योंकि उनके साथ योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण हैं और धनुर्धारी पार्थ है।

विषादयोग से आरम्भ हुई यह यात्रा विजय योग तक जाएगी।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।1.1।।

इस श्लोक से आरम्भ हुई यह यात्रा

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।18.78।

श्लोक पर आकर रुकी। '**धर्म**' शब्द से शुरू हुई यह यात्रा '**मम**' शब्द पर आकर रुकी। इस बीच भगवान श्री कृष्ण ने सात सौ श्लोक कहे। ये सात सौ श्लोक धर्ममय हैं। अर्जुन भगवान श्री कृष्ण और सञ्जय का यह विलक्षण संवाद यहाँ पूर्ण हुआ। हमारे मन में दीपावली का यह दीपक सदा प्रज्वलित रहे ऐसी शुभकामना के साथ आज का विवेचन पूर्ण हुआ।

इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर हुए।

प्रश्नोत्तर सत्र;-

प्रश्नकर्ता: उमेश भैया
प्रश्न-1) हम लोग हमारे जीवन में गीता के अठारह अध्यायों के कण्ठस्थीकरण के बाद मुख्य शिक्षा क्या ग्रहण करें?
उत्तर - भगवद्गीता पराक्रम का ग्रन्थ है। कर्म के साथ भक्ति का सन्देश है गीता। यम, नियम का अभ्यास करें। पाठ और पारायण का जो नियम बनाएँ उसका पालन करें। घड़ी के मिनिट के काँटे की तरह जीवन चलता है। परन्तु हमारी श्रद्धा कम न हो। निरन्तर पाठ से हमारा व्यवहार सरल होगा और वाणी पवित्र होगी। मन गीता पाठ के तप से पवित्र हो जाता है। इस प्रकार अनजाने ही भगवद्गीता हमारे जीवन में आ जाती है और हमारा जीवन पूर्णता को प्राप्त होता है। इस लोक और परलोक में श्रेय प्रदान करने वाला ग्रन्थ भगवद्गीता है।

प्रश्न - 2) कण्ठस्थीकरण के लिये क्या आसान तरीका है?
उत्तर - संकल्प दृढ़ हो तो गीता साल-दो-साल में कण्ठस्थ हो जाएगी। पाठ के साथ श्रवण का भी महत्त्व है। आदरणीय सुवर्णा काकी जी के ऑडियो से मदद ले सकते हैं। साथ ही आप अपनी आवाज में गीता जी के श्लोक रिकॉर्ड करें और समय-समय पर सुने तो भी जल्दी याद हो जाएँगें। 'यतात्मा दृढ़ निश्चयः' यह दृढ़ निश्चय का ही विषय है।

प्रश्नकर्ता - नानकचंद गर्ग भैया
प्रश्न-1) अठारहवें अध्याय के 61वें श्लोक **(ईश्वरः(स्) सर्वभूतानां(म्), हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥)** और
नवें अध्याय के 4थे श्लोक **(मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।**) में

विरोधाभास क्यों है?

उत्तर - यह समझने की आवश्यकता है। जैसे पूज्य गुरुदेव ने गीता परिवार की स्थापना की। वे प्रतिदिन यहाँ पर उपस्थित नहीं होते परन्तु उनके मार्गदर्शन में ही हम सब कार्य करते हैं। इसी प्रकार भगवान की अध्यक्षता में सभी जीव कार्य करते हैं। जैसे टाटा नमक रतन टाटा ने स्वयं नहीं बनाया कम्पनी के किसी कर्मचारी ने बनाया लेकिन नमक टाटा का ही कहा जाता है।

प्रश्न - अठारहवें अध्याय में "नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मि गतसन्देहः(ख्), करिष्ये वचनं(न्) तव॥" कहने के बाद भी अभिमन्यु के वीरगति प्राप्त होने पर अर्जुन मोहग्रस्त क्यों हो जाते हैं?

उत्तर - यह क्षणिक आवेग है। किसी के घर में प्रियजनों की मृत्यु के बाद कोई-कोई कई-कई दिनों तक शोक-ग्रस्त रहते हैं। जबकि ज्ञानी यथाशीघ्र शोक से मुक्त हो जाते हैं। जिनको जीवन में जीवन की नश्वरता का ज्ञान समझ में आ गया वे शीघ्र सम्भल जाते हैं। प्रसाद (मन के भीतर आनंद का झरना) भगवान की कृपा से ही प्राप्त होता है। मृत्यु भी आनन्द का उत्सव है तो फिर दुख किस बात का। यह बात अर्जुन को बहुत अच्छे से समझ में आ गया।

प्रश्नकर्ता - पुष्पा दीदी

प्रश्न -1) ध्यान लगाते समय मन चंचल होता है।

उत्तर - एकदम सबकुछ नहीं होता प्रयास करना पड़ता है। भगवान ने भी कहा कि मन चंचल है और उसका उपाय केवल और केवल अभ्यास है।

प्रश्न -2) मैं दान मन से देती हूँ परन्तु कभी कभी नहीं देने पर भी पछतावा होता है।

उत्तर - दान देश और काल का विचार करके पात्र व्यक्ति को देना चाहिये। सहृदयता का कोई अतिरिक्त लाभ ले तो यह ठीक नहीं।

प्रश्नकर्ता - नमिता दीदी

प्रश्न - गुरुद्रोण ने एकलव्य से उनका अँगूठा क्यों लिया?

उत्तर - यह प्रामाणिक नहीं है। मूल महाभारत में अँगूठा माँगने का प्रसंग है ही नहीं। केवल यह वचन गुरुद्रोण ने लिया कि उनके शिष्यों (पाण्डव और कौरवों के बीच युद्ध की स्थिति में) के पक्ष या विरोध में कभी धनुष नहीं उठाओगे। इतना कठोर वचन देने के प्रतिकार्थ लोगों ने लिया मानों गुरुद्रोण ने एकलव्य का अँगूठा ही दक्षिणा में माँग लिया।

प्रश्नकर्ता - पुखराज भैया

प्रश्न - अठारहवें अध्याय में चारों वर्णों के स्वभावज कर्म बताए हैं। परन्तु इस कारण समाज में ऊँच-नीच का दुर्भाव फैल गया है। जबकि गीता में ऐसा नहीं कहा गया है। हम ऐसी स्थिति में कैसे लोगों को समझाएँ।

उत्तर - भगवान ने कहा है कि **"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागश:।"** अर्थात गुण और कर्म के आधार पर चार वर्णों की सृष्टि भगवान ने की है और प्राचीन काल में वर्ण परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं। महर्षि विश्वामित्र राजर्षि थे वे बाद में ब्रह्मर्षि बने। परन्तु बाद में छुआछूत का मामला आया। परिचारक या डॉक्टर के संदर्भ में देखें तो कोरोनाकाल में इनके साथ भी हमने छुआछूत का व्यवहार किया जो जरूरी था। ऐसी परिस्थिति हो सकता है, पहले भी रही हो और हमने उसे केवल छुआछूत के रूप में ही ग्रहण किया जबकि उसके पीछे की वैज्ञानिकता को ग्रहण नहीं किया। जातिव्यवस्था का छुआछूत गलत है। हमारे पूर्वजों ने अज्ञानवश इस प्रकार का पाप किया है जिसका परिमार्जन हमें छुआछूत से ग्रस्त भाई-बहनों को शिक्षा आदि के माध्यम से आगे लाकर करना चाहिए। बाबा साहब अम्बेडकर जैसे महान व्यक्ति को छुआछूत के कारण कष्ट उठाना पड़ा। हमें इस विकृति से मुक्ति पाना ही होगा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'मोक्षसन्यासयोग' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||